क्या भारतीय शिक्षा में फैली अव्यवस्थाओं के लॉन्चिंग पैड्स पर भी सर्जिकल स्ट्राइक की जरूरत है ?

प्रो. विजय कान्त वर्मा
आईसेक्ट विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

सारांश
*लगभग 3 साल पहले **शोधायतन** के प्रथम अंक में इस लेखक ने अपने एक लेख में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने के लिए कुछ सुझाव दिये थे। उनमें से दो सुझाव इनपुट टू ड्राफ्ट नेशनल एजूकेशन पॉलिसी 2016 में शामिल किये गये हैं। पहला सुझाव विश्वविद्यालयों में संबद्धता के लिए कॉलेजों की अधिकतम संख्या पर सीमा लगाने का था और दूसरा आई.ए.एस. और आईएफएस की तर्ज पर शिक्षकों की राष्ट्रीय सेवा की स्थापना का था। पालिसी लागू करने के मामले में हमारा, जैसा निराशाजनक इतिहास रहा है, उसे देखते हुए इसके लागू होने पर संशय ही है। और इसीलिए इस लेख को लिखने की प्रेरणा मिली। यह आलेख शुद्ध रूप से एक शोधपत्र की श्रेणी में नहीं आता और ना ही इसमें निबंध के सारे गुणों को ढूंढा जाना चाहिए। शायद इसे अनुभव जनित वृत्तांत कहा जा सके या फिर वर्तमान शिक्षा व्यवस्था, विशेषकर उच्च शिक्षा व्यवस्था पर एक त्वरित टिप्पणी कहना ज्यादा उचित होगा। भारतीय सेना द्वारा पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में 29 सितम्बर 2016 को आतंकवादी शिविरों पर किए गए सर्जिकल स्ट्राइक के बाद सर्जिकल स्ट्राइक शब्द काफी चर्चा में है। 8 नवम्बर 2016 को घोषित विमुद्रीकरण को भी कालेधन, भ्रष्टाचार, आतंकवाद और नक्लसलवाद पर एक सर्जिकल स्ट्राइक कहा जा रहा है। सर्जिकल स्ट्राइक सामान्यतः सेना के उस ऑपरेशन को कहा जाता है जिसमें एक सर्जन की दक्षता याने पूरी एकाग्रता तथा सटीक साधनों से दुश्मन के सिर्फ उस हिस्से को ध्वस्त किया जाता है जो सैन्य दृष्टि से अहम हो, दुश्मन का मनोबल गिरा सके तथा खुद की सेना का मनोबल ऊँचा कर सके। स्पष्ट उद्देश्य, त्वरित परिणाम, अचंभित करने की क्षमता, गोपनीयता तथा अचूक निशानें के साथ टारगेट पर विध्वंस, किसी सर्जिकल स्ट्राइक के मुख्य तत्व होते हैं। इतने सालों में बदहाल होती शिक्षा व्यवस्था को कमेटी दर कमेटी, कमीशन दर कमीशन और पॉलिसी दर पॉलिसी सुधारने की कौशिस होती रही लेकिन आज भी वह बदहाल है। नई शिक्षा नीति 2016 भी दरवाजे पर खड़ी है। अभी तक शिक्षा में उत्तम नीतियां बनती रही हैं लेकिन लागू होने में कहीं ना कहीं बहुत बड़ी कमी रही है। क्या लागू होने के लिए समय निर्धारण, प्रधानमंत्री द्वारा 8 नवंबर 2016 को दिए गए नोटबंदी के झटके की तरह हो ? क्या सार्थक परिणाम के लिए लीक से बंधे विद्वानों के बदले शिक्षा कमांडो की आवश्यकता होगी ? प्रस्तुत लेख शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त बदहाली को रेखांकित करते हुए सर्जिकल स्ट्राइक के टारगेट ढूंढने का प्रयास करता है।*

I सुलगती पृष्ठभूमि

एक उत्तम शिक्षा व्यवस्था ही उत्तम राष्ट्र को जन्म देती है–

स्वामी विवेकानन्द

हमारी लोकतंत्र की व्यवस्था कई स्तम्भों पर टिकी है। इसमें प्रमुख है राजनैतिक स्तम्भ। राजनैतिक व्यवस्था की बदहाल स्थिति का अंदाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि वर्तमान में आधे से ज्यादा सांसद और विधायकों पर विभिन्न अपराधिक और भ्रष्टाचार के मुकदमें चल रहे हैं कई जमानत पर हैं, कई जेल में। अरबों रूपयों के घोटाले आम बात हो गई है। दूसरा महत्वपूर्ण स्तम्भ न्यायपालिका है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिस पर सामान्यतः कोई टिप्पणी वर्जित है। पीढ़ी दर पीढ़ी न्याय के लिए कतार में लगे मुकदमों का अंबार, तारीख पर तारीख का बहुचर्चित जुमला, सयानो की सलाह कि न्यायालय और पुलिस से दूर रहें–जिन्दगी सुकून से कटेगी और न्यायपालिका और सरकार का एक–दूसरे पर आक्षेप; ना कहते हुए भी बहुत कुछ कहता है। समाज का एक बहुत शक्तिशाली स्तम्भ है कार्य पालिका जिसमें सब से उपर की कतार में ज्यादातर आई.ए.एस अफसर आते हैं जो आई एम सुप्रीम के भाव से चाहे, शिक्षा हो, चाहे पर्यावरण चाहे विद्युत बोर्ड चाहे चिकित्सा हो, हर क्षेत्र में हर फनमौला की तरह शिखर पर विराजमान होते हैं। नौकरशाही में अव्यवस्थाओं पर इतना कुछ कहा जा चुका है कि इस पर कई फिल्म, कई टी वी सीरियल और कई किताबों की रचना हो चुकी है और हाल की नोटबंदी के बीच चीफ सेक्रेटरी से क्लर्क तथा बैंक ऑफिसरों से आरबीआई अफसरों पर छापे और अकूत धन की हेराफेरी की कहानी बहुत कुछ कहती है। मीडिया को चौथा स्थंम्भ माना गया है। यह व्यवस्था भी रेटिंग, टी आर पी और फायदे के फेर में पत्रकारिता के कायदे भूलती पीला पड़ती दिखती है। हर समाचार पत्र और हर चैनल किसी विचारधारा से बंधा है इसलिए एक ही बात कहीं हरे रंग में रंगी दिखती है कहीं लाल रंग में कहीं धार्मिक चश्मे से कहीं वामपंथी चश्में से। गोया कि असल बात तक इस व्यवस्था में पहुंचना मुश्किल ही है। मतलब यह कि जिस व्यवस्था पर नजर डालिए जर्जर और बदहाल दिखती है। पूरे कुएं में भांग घुली होना शायद इसे ही कहते हैं। शिक्षा सभी व्यवस्थाओं की जननी है और इसी नींव पर सारे स्तम्भ खड़े हैं। तो क्या यह माना जा सकता है कि सभी अव्यवस्थाओं की गंगोत्री शिक्षा व्यवस्था से निकलती है क्योंकि यही व्यवस्था तो नागरिक, नेता, नौकरशाह और न्यायविद तैयार करती है। शिक्षा व्यवस्था की नब्ज टटोलने के लिए कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं। टीवी पर नकल करवाने के ढ़ेरों अदभुद दृश्य, प्रवीणता की सूचि में प्रथम स्थान पर आई छात्रा का विषय का नाम भी उच्चारण नहीं कर पाना, शिक्षक महीनों के नाम तक नहीं लिख पा रहे, मेडिकल प्रवेश भ्रष्टाचार के कारण

रद्द, बरकलउल्ला विश्वविद्यालय के यू.आई.टी. में 15 माह से शिक्षकों को वेतन नहीं –मामला कोर्ट में,एआईसीटीई टीम का घूस लेते पकड़ा जाना, इंडस्ट्री का कहना की 80% पास आउट नौकरी के लायक नहीं, व्यापम घोटाला, नियुक्ति घोटाला, परीक्षाफल घोटाला आदि आदि। यह उद्धरण जर्जर व्यवस्था की सिर्फ ऊपरी परत लगते हैं। इस व्यवस्था से निकले लोगों से कैसे

बेंचमार्क रखने की अपेक्षा की जा सकती है ? शिक्षा व्यवस्था में प्राइमरी से लेकर उच्च शिक्षा; ढ़ेरों लोग, ढ़ेरों सेगमेंट –शायद देश की सबसे बड़ी व्यवस्था। हालांकि इस लेख में मुख्यतः उच्च शिक्षा की बात की गई है लेकिन सुधार शिक्षा के सभी क्षेत्रों में जरूरी है। यह भी गौर करना होगा कि शिक्षा में क्रांतिकारी सुधार के बिना किसी और क्षेत्र में सुधार की अपेक्षा रखना बेमानी भी है।

II विनियामक संस्थाओं का मायाजाल

एक पुराने और जर्जर तंत्र को बदलने के लिए उस सोच को बदलना होगा जिसने उसे पैदा किया–

वीर सावरकर

उच्च शिक्षा में नीति निर्धारण तथा सुचारू संचालन के लिए ढ़ेरों संस्थाएं हैं। यूजीसी, एआईसीटीई, एनसीआरटी, उच्च शिक्षा विभाग, विनियामक आयोग आदि आदि! विरोधाभास और जटिल नियम परिनियमों का एक मायाजाल सा लगता है। अंग्रेजों के नजरिये से बनाई गई व्यवस्था की नींव **'अविश्वास'** पर रखी गई थी जो अब भी जारी है। इसलिए सारी कवायद एक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का फ्रेमवर्क बनाने तथा एक फेसिलिटेटर के रूप में कार्य करने के बदले, इंस्पेक्टर संस्कृति तैयार करने में खर्च हो गई। इससे गुणवत्ता के बदले भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता गया। पता नहीं 7 बी.सी. पूर्व जब तक्षशिला विश्वविद्यालय विश्व का सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय था या उसके बाद नालंदा विश्वविद्यालय ने गुणवत्ता में अपना परचम लहराया तो यूजीसी या एआइसीटीई, बीसीआई जैसी संस्थाएं थी या नहीं जो निरीक्षण किया करती थीं! शायद ये विश्वविद्यालय स्वअनुशासन, स्वसंचालन एवं स्वपरीक्षण और ईमानदारी के कारण शिखर पर पहुंचे होंगे। आज भी जो अपेक्षाकृत स्वतंत्र शिक्षण संस्थाएं हैं जैसे IIM, IIT, IIST, IIITM आदि, जिन पर इंस्पेक्टर राज की तलवार का असर कम है, अपेक्षाकृत बेहतर हैं। पहले तो नियमों की धुंध। शिक्षा एक नियम अनेक। किसी राज्य में कुछ नियम किसी राज्य में कुछ और केन्द्र के कुछ नियम राज्य के कुछ जुदा नियम, राजकीय विश्वविद्यालय के नियम अलग केन्द्रीय विश्वविद्यालय के कुछ और। फिर कहीं 10 एकड़ जमीन चाहिए कहीं पचास, कहीं खुद का भवन कहीं किराये पर चल जाएगा और इन सब के बीच में सबसे दयनीय तथा सबसे सौतेला निजी विश्वविद्यालय जिसके लिए कई नियामक संस्थाएं। जितनी भी विनियामक संस्थाएं बढ़ी हैं उतना ही भ्रष्टाचार ने पैर पसारे हैं। विनियामक संस्थाएं, राज्य सरकार, फिर केन्द्र सरकार, और फिर न्यायपालिका जहां से स्थगन लाकर पूर परदृश्य बदल जाता है। एक दो उदाहरण काफी होंगे। एक समय यह भी हुआ कि केन्द्रीय शिक्षा मंत्री के बदलते ही सारे राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी महाविद्यालयों के निदेशक बदल दिये गये। बीएड महाविद्यालयों के मामले में न्यायपालिका का दखल भी ज्यादा पुराना नहीं है और उसके बाद भी

स्थिति ज्यों की त्यों। फिर विश्वविद्यालय कार्य परिषद के चयन उसकी कार्यप्रणाली और गवर्निंग बॉडी का कितना योगदान है और कितना व्यवधान है इस पर कुछ कहना बेमानी है। एक रिव्यू कहता है कि बहुत

बड़ी संख्या में राजनैतिक हस्तक्षेप और यूनियनबाजी के कारण ज्यादातर सरकारी विश्वविद्यालयों में कुलपति अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाते। दूसरी ओर निजी विश्वविद्यालय के कुलपति प्रशासनिक और आर्थिक निर्णयों के लिए शक्तिहीन दिखते हैं। यह खौलते देगची में से परीक्षण के लिए निकाले गये चावल के कुछ दानों के समान है जो इशारा करते है कि अंदर भी चावल काफी कुछ पक गये हैं। शायद इस मायाजाल ने एक समानांतर शिक्षा माफिया को जन्म दिया है। ऐसा भी कुछ लोग मानते हैं कि हर कठिनाई को उचित मूल्य पर यह माफिया मैनेज करने की बात करता है। निरीक्षण–परीक्षण की एक दिलचस्प बात यह भी है कि दूर–दूर से जो इंस्पेक्टर आते है उनकी चेकलिस्ट गुणवत्ता के बदले गणना पर ज्यादा जोर देती है। किताब की संख्या, मास्टरजी की संख्या, उनकी योग्यता, जमीन के कागज आदि वही खोजबीन साल दर साल। इस डिजिटल तथा IT युग में जिसे दूर से ही जांचा जा सकता है फिर भी संस्थाओं को हजारों पेपर के दस्तावेज बनाने होते हैं वो भी 10-12 कापी में। पूरी संस्था सारा काम छोड़कर महीनों इसी काम में लगी होती है। यह भी बात छुपी नहीं है कि बहुत सी संस्थाएं उन्हीं के शब्दों में कहा जाए तो सब कुछ मैनेज कर लेती हैं। अब तो कई कन्सलटेंसी एजेन्सी पैदा हो गई हैं जो इंस्पेक्शन करवाने का बेड़ा तक उठाती हैं। दो दिन के इंस्पेक्शन में बमुश्किल कुछ घंटे काम के होते हैं फिर इंस्पैक्टरों का मिजाज या टीम की देखभाल आदि कई और ऐसे तत्व हो सकते हैं जो चेकलिस्ट का हिस्सा ना होते हुए भी असर डाल सकते हैं। आईटी तथा संचार की इतनी तरक्की के बाद भी गणना और दस्तावेजों की जांच में इतनी पुरानी विधि ? जो समय ऊर्जा और धन बर्बाद करने के अलावा भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है ? **यहां अगर बदलाव लाना है तो निरीक्षण पद्धति, नियामक संस्थाओं के जटिल फ्रेमवर्क तथा मल्टीपल कमांड पर शायद निशाना साधने की जरूरत है ताकि सरल नियम, त्वरित तथा कठोर दंड ओर सबसे ऊपर टेक्नालाजी जनित पेपरलस निरीक्षण के द्वारा शिक्षा में सुशासन लाया जा सके।** शैक्षणिक हेड और शिक्षकों को किस तरह सशक्त बनाएं इस पर भी गंभीरता से सोचने की जरूरत है। नियामक संस्थाओं को अपना रोबदार दरोगा वाला चोला उतारकर फेसिलीटेटर के रोल में आना होगा। एक क्रांतिकारी शुरूआत इससे हो सकती है कि निरीक्षण टीम के ठहरने तथा वाहन की व्यवस्था भी विनियामक संस्थाओं के नेटवर्क द्वारा की जाए।

निरीक्षण इंस्पैक्शन टीम द्वारा करने के बदले डिजिटल तथा इंटरनेट के माध्यम से करना सही कदम होगा। इससे पारदर्शिता तथा विश्वास बढ़ेगा। गुणवत्ता इंस्पैक्शन द्वारा नहीं जांची जा सकती। उसके लिए नये डिजिटल तथा प्रतिस्पर्धा के पैमाने बनाने होंगे।

III राग स्वायत्तता – सुरलय और ताल में कमी

स्वतंत्रता और जवाबदेही एक सिक्के के दो पहलू हैं–
सुभाष चन्द्र बोस

सन् 1948 के एजुकेशन कमीशन से लेकर 1966 के कोठारी कमीशन, 2001 राममूर्ति कमीशन, 2005 के कैब कमीशन और अब 2016 की NEP- ढ़ेरों कमेटी, कमीशन तथा पालिसी में शिक्षण संस्थाओं की स्वायत्तता पर ना जाने कितना कहा गया कि अब स्वायत्तता, हर फोरम पर छेड़े जाने वाला राग हो गया है। भारत के राष्ट्रपति डॉ जाकिर हुसैन जो एक शिक्षाविद थे उनके द्वारा पटना में 1955 में कही गई बात आज भी महत्वपूर्ण है। ''विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता मुझे सबसे ज्यादा परेशान करती है। विदेशी शासन में विश्वविद्यालय स्वतंत्र नही थे इसीलिए वे देश के विवेक और जीवन मूल्यों के केन्द्र नहीं बन सके'' यही बात सन 1966 में तत्कालीन राष्ट्रपति वी वी गिरि ने मैसूर में दोहराई। NPE-68 कहता है कि शिक्षण संस्थाओं को स्वायत्तता होनी चाहिए। विद्यार्थी तथा शिक्षक की नियुक्ति में। कोर्स करिकुलम के चयन में तथा पढ़ाई की पद्धति में। इस बारे में वर्तमान स्थिति जानने के लिए इतना ही काफी होगा कि हर विश्वविद्यालय तथा संस्था हर फोरम पर कठिनाईयों की बात करते हुए स्वायत्तता की दोहाई अवश्य देते हैं।

विद्वानों तथा शिक्षाविदों के, हर मंच पर बहुत सारे जाने माने चेहरे होते हैं। वे हर बार स्वायत्तता पर, गुणवत्ता पर और कौशल विकास पर, अंतराष्ट्रीय करण पर, सामाजिक मूल्यों जैसे मुद्दों पर गिनी गिनाई बात करते है। आश्चर्य होता है कि वही बात कैसे हर बार नए अंदाज में कर पाते हैं। और नतीजा वही ढ़ाक के तीन पात। इतने वर्षो बाद भी विश्वविद्यालय स्वायत्तता के काबिल नहीं बना पाए। स्वायत्तता के कई स्तर हैं। पाठ्यक्रम निर्धारण गुणवत्ता की दृष्टि से महत्वपूर्ण विषय है। इस संदर्भ में एक उद्धरण काफी होगा। म.प्र. में यह मुद्दा जोरों से उठा कि सभी विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम समान हो जिस पर एक कमेटी का भी गठन किया गया। वैसे यह स्वायत्तता की अवधारणा के बिल्कुल विपरीत है। लेकिन ऐसे निर्णय भी लिए जाते है जो स्वायत्रता को दर किनार करते है। कई बार यह भी लगता है कि यदि पाठ्यक्रम निर्धारण की स्वायत्तता दे भी दी जाए तो भी विश्वविद्यालय अपना करिकुलम बनाने में सक्षम होंगे ? इस बात में भी गहरा संदेह हो सकता है। एक दूसरा उदाहरण भी दिलचस्प है। 2009 के यूजीसी के नियम के अंतर्गत पीएचडी के लिए प्रवेश परीक्षा तथा कोर्सवर्क जरूरी था। यह नियम म.प्र. के सभी विश्वविद्यालयों ने 2011 तक नहीं माना। फलस्वरूप उनके द्वारा दी गई डिग्री की मान्यता पर प्रश्नचिन्ह लग गया। इसका एक कानूनी हल निकाला गया जिसमें पीएचडी की डिग्री मिलने के बाद पीएचडी करने वालों को प्री पीएचडी की प्रवेश परीक्षा तथा शोध कैसे करते है इस पर छः माह का कोर्स वर्क कराया गया। याने बैलगाड़ी के पीछे बैल जोतने का उपक्रम। शोध की डिग्री मिलने के बाद सिखाना शोध कैसे करते है और फिर अंत में प्रवेश परीक्षा लेना कि आप शोध करने के काबिल हैं या नहीं? और फिर न्यायिक दृष्टि से इसे सही हल भी पाया गया!! स्वायत्तता बिना जवाबदेही बे मायने है। यह भी दिलचस्प है कि शिखर पर बैठी नियामक संस्थाओं की जवाब देही नहीं बनती कि इतने वर्षो में भी भारतीय संस्थान गुणवत्ता में इतने नीचे क्यों है। सारी जवाबदेही उन संस्थाओं पर आ जाती है जो स्वायत्तता के लिए लड़ाई लड़ रहे हैं। प्रश्न है कि स्वायत्तता के काबिल संस्था को कैसे बनाया जाए। इतने विश्वविद्यालय क्या स्वायत्तता के काबिल हैं। एक–एक विश्व विद्यालय पांच सौ सात सौ महाविद्यालयों को संबंद्ध कर रहे हैं। 2016 की ड्राफ्ट पालिसी में 100 अधिकतम सीमा संबंद्धता के लिए तय की गई है जिसे लागू करना टेढ़ी खीर लगती है। स्वायत्तता के नाम पर डिग्री बांटने के केन्द्र भी एक सच्चाई हैं। यह भी दिलचस्प है कि शासकीय विश्वविद्यालयों में राज्यपाल द्वारा नियुक्त कुलपति को राज्यशासन द्वारा नियुक्त कुलसचिव से जूझना पड़ता है याने केन्द्र बनाम राज्य और सारी ऊर्जा इसी में निकल जाती है। और इसी जद्दो जहद में कुलपति का कई बार पूरा टर्म समाप्त हो जाता है। दूसरी ओर निजी संस्थाओं में कई बार यह भी पता नहीं चलता कि संस्था के शैक्षणिक शिखर पर बैठे व्यक्ति के मातहत कितने लोग हैं जो वास्तव में उससे ऊपर हैं। संस्था में शैक्षणिक प्रबंधन को पूरी तरह आर्थिक और प्रशासनिक प्रबंधन से अलग कर देखना भी एक विडम्बना है जो शासन के 4–6 केन्द्र पैदा कर ढांचे को कमजोर करते हैं। **शैक्षणिक हेड की आर्थिक तथा प्रशासनिक, प्रबंधन पर भी सर्वोच्वता सुनिश्चित करना अतिआवश्यक है। शिक्षण संस्थाओं के शीर्ष पर बैठे व्यक्ति को कागजों के अलावा वास्तव में सशक्त करना स्वायत्तता के मार्ग की शायद सबसे बड़ी जरूरत है।** स्वायत्तता कैसे एकाउन्टेबिलिटी के साथ आ सके इस अहम प्रश्न के उत्तर तो हैं, लेकिन उसे लागू करने के लिए नियामक स्तर पर एक ऐसी शक्तिशाली अधिकार प्राप्त टीम का गठन हो सकेगा या नहीं जो मिलिट्री की निपुणता और समय बद्धता से काम कर सके, **और सारे नियम अधिनियम** को पूरे भारत के लिए एक रूप और सरल कर सके, यह अपितु विचारणीय है।

IV प्रवेश से परीक्षा तक–सांप सीढ़ी का खेल

The computer has all the answers to corruption-
Bill Gates

भारतीय उच्च शिक्षा में प्रवेश से परीक्षा तक नियमों का एक जाल है जिसमें छिद्र ही छिद्र हैं। प्रवेश की एक तय तारीख होने के बाद भी रिकार्ड में जो तय अंतिम तारीख है उसके पहले, पर वास्तव में परीक्षा की तिथि तक एडमीशन किये जाने के किस्से बहुत असमान्य नहीं

है और ऐसी अनियमितता पकड़ा ना जाना और भी दिलचस्प है। इस खेल में कई पेंच है कई दांव हैं। सीट खाली ना रह जाए इस डर से मिडिलमैन के माध्यम से प्रवेश, फीस में भारी छूट, उपस्थिति का कोई बंधन नहीं। कई बार तो ऐसा भी हो सकता है कि विद्यार्थी कॉलेज के दर्शन सिर्फ परीक्षा के लिए करता हो। प्रवेश से परीक्षा के खेल में ऐसी कई छुपी सीढ़ियां हैं। कई शिक्षक एक कॉलेज में पूर्णकालिक शिक्षक होते हुए भी दूसरे कालेजों के पूर्णकालिक छात्र के रूप में प्रवेश पा जाते है। परीक्षाओं मे हेराफरी, मेडइजी 10 प्रश्नपत्रों के गैस पेपर से पास होना, परीक्षा प्रश्न पत्रों का निम्न स्तर, उत्तर–पुस्तिकाओं के मूल्याकंन में भारी गड़बड़ी, न्यायालय द्वारा स्थगन के कारण प्रवेश तथा परीक्षाओं में भारी फेर बदल। यह सब सांप सीढ़ी के खेल जैसा ही तो लगता है। और यही कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में शैक्षणिक सत्र की दुर्दशा की कहानी भी कहता है। सतत मूल्याकंन, प्रबंधन द्वारा मुसीबत के रूप में लिया जाता है और इसीलिए मूल्याकंन तथा मूल्याकंन करने वाले का स्तर भी बहुत असंतोषजनक होता है। कालेज और विश्वविद्यालय सारे सत्र परीक्षा कराने और पेपर जांचने में ही समय बिताते हैं। जरूरी है कि इस पूरी प्रक्रिया का समाधान के लिए गहरा विश्लेषण हो।

इन जटिल प्रश्नों का समाधान नई आई टी टेक्नालॉजी का समुचित उपयोग दे सकता है। फर्जी डिग्री भी एक बड़ी समस्या है। **उच्च शिक्षा की हर उपाधि का केन्द्रीय रजिस्ट्रेशन, मेडिकल की तर्ज पर हो तो फर्जी डिग्री की समस्या पर कुछ अंकुश लगाया जा सकता है। एक विषय के लिए एक ही अखिल भारतीय या जोनल स्तर की प्रवेश परीक्षा हो जो ऑनलाइन हो और प्रवेश सेन्ट्रल काउंसलिंग द्वारा हो।** इसे आउटसोर्स कर व्यवहारिक और प्रभावशाली बनाया जा सकता है। आधार कार्ड या पैन नंबर आधारित सारा डिजिटल एडमिशन हो तो दो जगह उपस्थिति रोकी जा सकती है। कक्षा में उपस्थिति का रिकार्ड भी ठीक रखा जा सकता है। एक डिग्री की अंतिम परीक्षा दो भागों में हो पहला भाग केन्द्रीय आनलाइन हो जिसके बाद ही विद्यार्थी कॉलेज/विश्वविद्यालय में दूसरे भाग याने फाइनल परीक्षा दे सके। निरंतर मूल्याकंन कॉलेज/विश्वविद्यालय स्तर पर आनलाइन पेपर लेस हो। सीबीसीएस अनिवार्य रूप से सभी विषयों पर लागू हो ओर इसकी छूट विश्वविद्यालय या अलग–अलग नियामक संस्थाओं पर ना छोड़ी जाए।

V शिक्षक–कर्णधार से संविदा शिक्षक और शिक्षाकर्मी का दर्दनाक सफर

A true teacher takes a hand, opens a mind touches a heart and shapes up a life-

Pt. Madan Mohan Malviya

आज शिक्षा की बदहाली का एक प्रमुख कारण है योग्य शिक्षकों का अभाव, उनका अवमूल्यन, उनके गिरते नैतिक मूल्य और उनका शोषण। सरकारी शिक्षक इतना सुरक्षित कि ना जवाबदेही ना फीडबेक का डर। दूसरी ओर निजी संस्थाओं का शिक्षक; एकदम असुरक्षित, डरा हुआ और प्रबंधन की दया पर, कम वेतन पर। इन सब का एक बायप्रोडक्ट है–शिक्षकों में नैतिक मूल्यों का पतन, दोहरा चरित्र और झूठ की प्रवृत्ति। यह छूत की बीमारी की तरह छात्रों में पहुंच रही है और नई पीढ़ी की शिक्षा और सोच दोनों को दीमक की तरह चाट रही है।

मौलाना अबुल कलाम आजाद 11 वर्षो तक स्वतंत्र भारत के शिक्षामंत्री रहे। उनके पास फार्मल शिक्षा के नाम पर कुछ नहीं था फिर भी वे एक सफल शिक्षाविद हुए। आजादी के बाद धीरे–धीरे पूरी शिक्षा व्यवस्था परीक्षा तथा डिग्री केन्द्रित हो गई है। धीरे–धीरे शिक्षकों का अवमूल्यन सबसे बड़ी त्रासदी है। किसी जमाने में

शिक्षण एक नोबल प्रोफेशन माना जाता था। अब जीविका के अंतिम विकल्प के रूप में जाना जाता है। शिक्षकों के लगभग 40 प्रतिशत पद खाली पड़े हैं। एक समय था जब गुरू, कुल–गुरू, राजर्षी, ब्रम्हर्षी के पदों से शिक्षक सम्मानित था फिर लेक्चरर, रीडर, प्रोफेसर आदि से नवाजा गया अब वह संविदा अतिथि शिक्षक तथा शिक्षाकर्मी की भूमिका में भी आ गया है जो सारी जिम्मेदारी संभालता है लेकिन एक दिहाड़ी मजदूर के रूप में जिसे कब नौकरी से हाथ धोना पड़े पता नहीं। कभी नेहरू जी जरूरत पड़ने पर मौलाना आजाद के आफिस जाते थे। विश्वविद्यालय के कुलपति, प्रोटोकोल में उस समय बहुत ऊपर थे। आज स्थिति दयनीय है। कुलपति, डिप्टी सेकेट्ररी और ज्वाइन्ट सेकेट्ररी के ऑफिस का चक्कर लगाता भी मिल सकता है। महत्वपूर्ण कमेटी तथा कमीशन की रिपोर्ट पर भी स्वीकृति की मोहर लगाने वाला, शिक्षाविद ना होकर नौकरशाह होता है। यह बात छुपी नहीं है कि नौकरशाही के चक्रव्यूह में फंसकर शिक्षकों के खाली पद भरे नहीं जा रहे हैं। नियमानुसार तो कुछ संस्थाओं में शिक्षकों की कमी के मद्देनजर सीटें कम हो जानी चाहिए थी या शून्य सत्र हो जाना चाहिए था पर ऐसा होता नहीं। सरकारी संस्थाओं में यह कर पान मुश्किल है और बहुत सी निजी संस्थाओं में काफी शिक्षकों की कमी भी मैनेज कर ली जाती है। वेतन तथा योग्यता तय होने के बावजूद इतने सालों में यह पेपर पर तो लागू होती दिखाई जाती हैं लेकिन वास्तव में होती नहीं। आईटी तथा संचार के साधनों से यह सुनिश्चित करना कठिन नहीं है कि कहां गड़बड़ है। लेकिन ऐसा होता नहीं। क्यों नहीं होता यह एक तिलस्म है!! इस तिलस्म को इतनी सारी नियामक संस्थाऐं क्यों नही तोड़ पाती यह भी आश्यर्चजनक है। यह जानते हुए भी कि देश में 40 प्रतिशत शिक्षकों के पद खाली है!! दूसरी ओर देखें तो जितने शिक्षकों की जरूरत है उतने हमारी शिक्षा व्यवस्था पैदा नहीं कर पा रही है या फिर आकर्षित नहीं कर पा रही है। 2016 की शिक्षा पालिसी में आई.ए.एस. की तर्ज पर एक अखिल भारतीय शिक्षा सेवा का कैडर बनाने की बात है। इतने सालों में शिक्षक भर्ती और वेतनमान दे पाने में तो व्यवस्था लागू नहीं हो सकी; वर्तमान प्रबल नौकरशाही के चलते शिक्षकों के लिए एक पावरफुल कैडर का गठन दिवा स्वप्न सा दिखता है। हां इसे यदि एक मिलिट्री

ऑपरेशन की तर्ज पर अंजाम दिया जाए तो बात बन सकती है। **शिक्षकों को सशक्त करने के साथ ही उनकी जवाबदेही सुनिश्चित करने वाला फ्रेमवर्क एक मिलिट्री मिशन मोड में ही हो सकता है क्योंकि शिक्षा का स्तर यदि सुधारना है तो शिक्षक का स्तर सुधारना होगा और उसे उचित सम्मान और गरिमा के पद पर वापस लाना होगा।** साथ ही शिक्षा के लिए जवाबदेह बनाना होगा ताकि अन्य कामों के आधार पर, जैसा कि चलन हो गया है, उसकी काबिलियित ना आंकी जाए बल्कि कॉलेजों में शिक्षा तथा विश्व विद्यालय में शोध तथा दोनो जगह शिक्षा में उनके योगदान पर आधारित हो। जब शिक्षकों का कैडर बने तो एक या कई एकेडमी भी बनें जो उनको ट्रेन करने के साथ ही फैकल्टी डेवलपमेंट का जिम्मा भी लें, क्योंकि आजकल फैकल्टी डेवलपमेंट के नाम पर संस्थाओं में काम कम आडम्बर ज्यादा है।

VI शिक्षा, कौशल विकास और शोध–स्पष्ट रोडमैप की जरूरत

अच्छी शिक्षा वही है जो शारीरिक परिश्रम के लिए उतना ही आदर जगाए जितना बौद्धिक उत्कृष्टता के लिए–

महात्मा गांधी

किसी भी शिक्षा में चाहे वह एकेडेमिक्स हो, स्किल हो या फिर रिसर्च और एक्सटेंशन हो, प्रभावशाली बनाने के लिए विद्यार्थी द्वारा शरीर के तीनों हिस्से हाथ, दिल और दिमाग का उपयोग होना आवश्यक है। मोटे तौर पर वोकेशनल कोर्स में हाथों का उपयोग ज्यादा होना चाहिए मतलब प्रैक्टिकल और प्रैक्टिस। एकेडेमिक्स और रिसर्च में दिमाग की ज्यादा भागीदारी होना चाहिए याने थ्योरी और विश्लेषण। दिल का संबंध संवेदनाओं और कला से होता है जो किसी भी विधा को संपूर्ण बनाती है अर्थात सामाजिक सरोकार और अनुशासन। शिक्षा की घटती गुणवत्ता को देख राष्ट्रपति से लेकर हर कोई चिंता ग्रस्त है कि शिक्षा की हालत क्यों इतनी बदहाल है कि हमारी कोई संस्था विश्व में प्रथम 200 विश्व विद्यालयों में नहीं है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान देना है और एक संपूर्ण सामाजिक व्यक्तित्व गढ़ना है। दुर्भाग्यवश अब शिक्षा का उद्देश्य नौकरी हो गया है। ज्ञान का पैमाना वेतन का पैकेज हो गया है। बड़ी–बड़ी कंपनियों के टेस्ट पेपर, क्विज और परीक्षा को क्रेक करना ज्ञान का सबसे बड़ा पैमाना बन गया है। इसीलिए कोचिंग की दुकानें विश्वविद्यालय और महाविद्यालय से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई हैं। करीकुलम को उद्योग तय करें यह भी कहा जाता है। उद्योग शुद्ध व्यापारिक संस्थान है इसीलिए वे एक शिक्षित व्यक्ति के स्थान पर ऐसा व्यक्ति ज्यादा पसंद करते हैं जो बिना किसी ट्रेनिंग के पहले दिन से काम पर लग जाए। दिलचस्प यह है कि वे शिक्षा में तो कोई सक्रिय भाग नहीं लेना चाहते लेकिन गुणवत्ता का रोना–रोते हैं। कोई जवाबदारी भी नहीं लेना चाहते। शिक्षा में स्किल का रोना भी रोया जाता है। आज देखें तो ऐकेडिमक्स और शोध के क्षेत्र से प्रेक्टिकल और स्किल नदारत है और दिमाग का उपयोग भी शॉर्टकट, परीक्षा पास करने के गुर सीखना और कट पेस्ट से शोधपत्र तैयार करना, तक सीमित हो गया है। कक्षाऐं और कैंपस खाली पड़े रहते है इसलिए पढ़ाई नही हो पाती तो सामाजिक सरोकार और व्यक्तित्व विकास के लिए छात्र को कैंपस में लाने की बात बेमानी ही है जिसका असर है, उनके गिरते नैतिक मूल्य गिरते नैतिक मूल्यों का असर देश के चरित्र पर देखा जा सकता है जहां हम भ्रष्टाचार की विश्व रैकिंग में काफी ऊपर है। ग्रॉस एनरोलमेंट रेशियों (GER) बढ़ाने के नाम पर कॉलेज दर कॉलेज खोलना सही नहीं है क्योंकि कॉलेज में आधी सीटें तो खाली रह जाती है। फिर प्रवेश में ढ़ील, परीक्षा में हेरा–फेरी, विद्यार्थी का ग्राहक की तरह आवभगत करने का चलन, उपस्थिति में छूट से लेकर डिग्री की गारंटी। इस व्यूह को तोड़ना आवश्यक है। दूसरी ओर अच्छे शिक्षक शिक्षण क्षेत्र में आएं और इसे अपना कैरियर बनाएं इस पर भी गंभीरता से त्वरित काम की जरूरत है।

शिक्षा में स्तर के क्षरण में मुख्य रूप से तीन कारण हैं। बाजारीकरण के चलते प्रवेश के नियमों में ढिलाई, उपस्थिति में छूट, परीक्षा में छूट, प्रयोगशालाओं का लगभग बंद होना और फल स्वरूप शिक्षा को ज्ञान से काट कर उसका सीधे परीक्षा और डिग्री से संबंध जोड़ देना। दूसरा कारण शिक्षकों की संख्या और गुणवत्ता में भारी कमी। तीसरा कारण है नैतिक और सामाजिक मूल्यों में भारी गिरावट चाहे वह शिक्षक हो या विद्यार्थी। शिक्षा में प्रयोगशाला, वर्कशॉप और हाथ से काम करने को बढ़ावा देने वाले स्किल को पुर्नस्थापित करना आवश्यक है। दुर्भाग्य से विनियामक संस्थाओं की चेकलिस्ट में यह सब वरीयता क्रम में बहुत नीचे है या शायद है ही नहीं। उच्च शिक्षा में स्किल और ITI स्तर पर वर्कर के लिए स्किल में गहरा अंतर है। दोनों में हाथ से काम कर परिश्रम की गरिमा स्थापित करना एक उद्देश्य अवश्य है लेकिन वोकेशनल या स्किल कोर्स में हाथ से काम का 80 प्रतिशत है जबकि उच्च शिक्षा में इसका उलट 20 प्रतिशत। यदि दोनों में घालमेल किया जाता है तो वह गलत होगा। वर्कर के लिए कौशल का उच्च स्तर हासिल करना आवश्यक है। जबकि उच्च शिक्षा में उसे अच्छे से समझने के लिए सिर्फ प्रेक्टिकल करना उद्देश्य है इसीलिए दोनों के समय ओर सिलेबस में जमीन आसमान का अंतर होना चाहिए। इसलिए स्किल का स्तर उच्च शिक्षा और ITI/डिप्लोमा/सर्टिफिकेट में एकदम अलग–अलग ही रखना जरूरी है।

शोध उच्च शिक्षा का एक बहुत महत्पपूर्ण हिस्सा है। विश्व रैकिंग में शोध का बहुत ज्यादा महत्व है। हमारे देश के किसी विश्वविद्यालय का विश्व के प्रथम 200 रैंक में ना होने में शोध की निराशाजनक स्थिति बहुत हद तक जिम्मेदार है। शिक्षण संस्थाओं द्वारा की गई वैश्विक शोध में भारत का योगदान महज 3.5 प्रतिशत है जो चीन के 22 प्रतिशत से बहुत पीछे है। यह प्रगति भी चीन ने पिछले दशक में ही तेजी से हासिल की। शोध और नवाचार को बढ़ावा देने के लिए जरूरी है सोच को बदला जाए। अभी भारत, जीडीपी का 2 प्रतिशत से काफी कम शोध पर खर्च करता है इसे

बढ़ाकर चार प्रतिशत तक ले जाना होगा। यह समझना तथा आत्मसात करना अति आवश्यक है कि कॉलेजों में शिक्षा तथा कौशल विकास पर सबसे ज्यादा खर्च किया जाए ओर विश्वविद्यालय में शोध पर। शोध भारी खर्च मांगता हैं। विश्वविद्यालयों में सरकारी खर्च पर शोध की अधोसंरचना बनानी होगी। शोध हो या शिक्षा हो यह लागत, मांगता है और शासन को इस पर नजरिया बदलना होगा। चाहे वह सरकारी हो या निजी विश्वविद्यालय बड़ी लागत, बड़ी स्वतंत्रता, बढ़ी जवाबदेही और बड़े टारगेट पर काम करने से ही स्थिति में तेजी से बदलाव आ सकेगा और इसमें सरकारी अनुदान समय की सबसे बड़ी जरूरत है। **निजी विश्वविद्यालय शोध में एक प्रभावशाली भूमिका निभा सकते हैं। चूंकि वे शून्य लाभ पर काम कर रहे हैं ओर लालफीताशाही के शिकार नहीं है इसलिए शोध के लिए और जहां तक हो सके उन्हें शून्य या बहुत कम ब्याज पर दीर्घकालीन लोन की सुविधा होना चाहिए।** यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि सवा सौ करोड़ के देश में, पिछले कई दशकों में विज्ञान, गणित और अन्य विधा में नई खोज या नये समीकरण लिखने वाला कोई शोध नहीं हुआ। बेसिक विषयों पर शोध का वातावरण बनाना आवश्यक है जिसके लिए प्रभावशाली ढंग से खर्च भी करना होगा और प्रोत्साहन भी देना होगा। स्किल डेवलपमेंट पर जिस गंभीरता से काम चल रहा है उतनी ही गंभीरता से शिक्षा और शोध पर भी कार्य योजना को क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। विशेषकर विश्वविद्यालयों में शोध पर। शोध के लिए फंड आबंटन भी एक बड़ा गेम लगता है जिसमें मिडिलमैन, लालफीताशही, घिसेपिटे नियम बाधक हैं जो नई सोच को, युवा शोधकर्ताओं को और उभरते विश्वविद्यालयों को उपर आने का मौका ही नहीं देते।

VII निष्कर्ष

शिक्षा के क्षेत्र में भारत में बहुत कुछ हुआ है तभी देश ने इतनी तरक्की की और हमारे विद्यार्थी विदेश में नाम कमा रहे हैं। लेकिन, यदि देश को विकासशील से विकसित और सुपर पावर की श्रेणी में लाना है तो आमूलचूल परिवर्तन अपेक्षित है। लगभग 750 विश्वविद्यालय चालीस हजार महाविद्यालय ग्यारह हजार से अधिक स्वायत्त शिक्षण संस्थाएं और शोध केन्द्र हैं देश में । इसके ऊपर दूरस्थ शिक्षा का बड़ा नेटवर्क ओर अनौपचारिक कोचिंग सेंटर। उच्च शिक्षा में काम करने वालों की तथा विद्यार्थियों की संख्या लगभग आठ करोड़ के आसपास पहुंच जाती है। फिर इस सत्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि इसकी बदहाली के लिए काफी हद तक स्कूली शिक्षा भी जिम्मेदार है क्योंकि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में जो रॉ मटेरियल आ रहा है वह स्कूलों से ही आ रहा है–वह भी छन कर। इसलिए अगर शिक्षा के विकास में क्रांति लानी है तो इसे समग्र रूप में लेना होगा। **यह भी सोचना होगा कि क्या वर्तमान विनियामक ढांचा जिसने पूरी तरह इंस्पेक्टर राज और लाइसंस संस्कृति का एक जाल सा बुन दिया है, सुधार से परे है और क्या इसे ध्वस्त कर नया ढांचा बनाना चाहिए ? क्या थके मांदे शिक्षाविदों के बस में नहीं है सार्थक सुधार ? क्योंकि लीक पर चलते हुए तो कुछ खास हो नहीं पाया तो क्या युवा जोश ओर क्रांतिकारी सोच के साथ IT टूल्स से सुसज्जित "शिक्षा कमांडो" की आवश्यकता है जो बुराइयों को ध्वस्त कर सकें और नवनिर्माण और आशा की बयार ला सकें ?** उच्च शिक्षा में बदलाव के लिए बहरहाल निम्न कदमों पर मिलिट्री ऑपरेशन की तर्ज पर विचार हो सकता है:–

(क) शिक्षकों की बदहाली पर सबसे पहले ध्यान देने की जरूरत सरकारी शिक्षक जो आकर्षक वेतन पाते हैं उनकी जवाबदेही सुनिश्चित हो। निजी संस्थानों के शिक्षकों को सम्मानजनक वेतन मिले। सभी शिक्षकों का सालाना परीक्षा द्वारा सतत मूल्याकंन, प्रभावशाली फीडबैक द्वारा काउंसलिंग और अनिवार्य कोर्स द्वारा डेव्हलपमेंट हो। 95 प्रतिशत से ऊपर शिक्षकों के पद हमेशा भरे रहें। **यह सब तभी संभव है जब दो उपाय अनिवार्य रूप से हों। पहला उपरोक्त कदम निरीक्षण द्वारा नहीं बल्कि आईटी की आधुनिकतम टैक्नालॉजी के माध्यम से सुनिश्चित हों। दूसरा शिक्षकों को समुचित वेतन मिले तथा जॉब में सुरक्षा की व्यवस्था हो। इसे इनकम टैक्स रिटर्न तथा बैंक स्टेटमेंट से निरंतर जांचा जाए।** जरूरी है कि निजी संस्थानों में economic viability के लिए, सरकार **'गरीबी हटाओ'** की योजनाओं में जैसा सब्सीडी के रूप में खर्च करती है उसी तर्ज पर **'शिक्षक बचाओ'** के लिए उचित आर्थिक व्यवस्था सब्सिडी तथा अनुदान की व्यवस्था करे ताकि कम फीस और खाली सीटों का बोझ शिक्षकों पर ना पड़े बल्कि सरकार वहन करे। **सबसे अहम बात संविदा शिक्षकों का चलन कानूनी रूप से बंद हो।**

(ख) सेमेस्टर या वार्षिक परीक्षाएं दो स्तर पर हों। शुरू में यह व्यवस्था स्नातक और स्नातकोत्तर की अंतिम परीक्षा में लागू किया जाए और धीरे–धीरे हर Term End परीक्षा (Semester End Examination) मे। **एक परीक्षा केन्द्रीय स्तर पर आब्जेक्टिव आनलाइन टेस्ट द्वारा हो जो विद्यार्थी कभी भी ले सके और तुरन्त रिजल्ट पा सके। फाइनल परीक्षा देने के पहले इसे पास करना आवश्यक हो। दूसरी फाइनल परीक्षा संस्था/ विश्वविद्यालय स्तर पर हो जैसी कि अभी भी होती है।** केन्द्रीय स्तर पर आनलाइन टेस्ट के लिए एक एक्सपर्ट संस्था का गठन हो सकता है हर डिसिप्लिनके लिए। इसमें भी केन्द्रीय स्तर पर बड़ी IT कंपनी की मदद ली जा सकती है। निरंतर मूल्यांकन आनलाइन तथा पेपरलेस हो।

(ग) इन्फ्रास्ट्रक्चर, शिक्षकों की भर्ती तथा वेतन, विद्यार्थियों का प्रवेश, उपस्थिति तथा निरंतर मूल्यांकन, परीक्षा तथा मूल्यांकन; इन सभी विषयों पर नियमों के पालन को सुनिश्चित करने में **इंस्पैक्शन संस्कृति बंद कर पूर्णतः टेक्नालाजी की सहायता तथा आउट सोर्सिंग की मदद से वर्चुअल वेरिफिकेशन का प्रावधान होना चाहिए**–पासपोर्ट, रेल रिजर्ववेशन आदि कई उदाहरण है जहां काम आउटसोर्स से हुआ है।

(घ) **उच्च शिक्षा को राज्यों के अधिकार क्षेत्र से पूरी तरह हटा कर केन्द्र सरकार के दायरे में लाना।** सभी स्कूलों को सिर्फ राज्य सरकार के दायरे में लाने पर भी विचार हो सकता है। सभी नियमों का सरलीकरण और विनियामक संस्थाओं को एकीकृत कर मल्टीपल कमांड से निजात दिलाकर सिंगल फैसिलिटेटर के आधार पर केन्द्रीय विनियामक संस्था का पुनर्गठन। एक्रेडिटेशन के लिए एक ही संस्था का पुनर्गठन ओर सरलीकरण।

(च) **इंस्पेक्टर और लाइसेंस संस्कृति उच्च शिक्षा क्षेत्र से पूरी तरह ध्वस्त करने का उपक्रम।** एक ही नियम, कड़ाई से पालन और कठोर दंड की संस्कृति की स्थापना के लिए कार्यवाही। **शिक्षा के मामले में अलग से एक फास्ट ट्रैक कोर्ट जो शीघ्र न्याय दे सके उसका गठन।**

(छ) **उच्च शिक्षा में पूरे देश में या देश को जोन में बांट कर सिंगल विंडो सिंगल टेस्ट से प्रवेश और मेडिकल की तर्ज पर हर विषय की डिग्री का प्रवेश से उपाधि तक का केन्द्रीय रजिस्ट्रेशन बोर्ड द्वारा रजिस्ट्रेशन।** यह फर्जी डिग्री पर लगाम लगा सकेगा। हर डिसिप्लिन के लिए एक केन्द्रीय बोर्ड का गठन किया जा सकता है जिसमें रजिस्ट्रेशन के बाद ही डिग्री को मान्यता मिले। छात्रों की उपस्थिति भी टैक्नालाजी के उपयोग से सुनिश्चित हो। इसके लिए आउटसोर्सिंग के जरिए शीघ्रता लाई जा सकती है।

(ज) देश में कैशलेस व्यवस्था की बात हो रही है। शिक्षा के क्षेत्र को इसमें पहल करनी चाहिए और स्कूल से यूजीसी तक सभी संस्थाओं को पूरी तरह कैशलेस बन जाना चाहिए। कैशलेस की तर्ज पर ही शिक्षा में व्यवस्था को पूरी तरह पेपरलेस बनाने के लिए युद्ध स्तर पर काम होना चाहिए। कम से कम प्रशासन, प्रवेश, पत्राचार रिकार्ड, अर्थ व्यवस्था तथ छात्रों के सारे काम उच्चतम प्राथमिकता से पेपरलेस किए जाने चाहिए। सतत मूल्यांकन, परीक्षा आदि भी धीरे–धीरे पेपरलेस बन जानी चाहिए। **पूरी शिक्षा व्यवस्था कैशलेस और पेपरलेस तथा पारदर्शी होने से भ्रष्टाचार कम हो सकेगा और कार्यकुशलता बढ़ सकेगी। समयबद्ध तरीके से मिशन मोड़ में पूरा करने की जरूरत है।**

(झ) कई महत्वपूर्ण कदम जैसे शिक्षकों के लिए आईएएस की तरह अलग कैडर का गठन, एक विश्वविद्यालय के अंतर्गत 100 से ज्यादा कॉलेज ना होने की सीमा। एकल विनियामक संस्था तथा एकल एक्रेडिटेशन संस्था का गठन। **निजी, सरकारी और केन्द्रीय संस्थाओं के लिए समान नियमः इन सब को समयबद्ध तरीके से मिशन मोड़ में पूरा करने की कार्य योजना जो पारदर्शी और जवाबदेह हो। एक विश्वविद्यालय में अधिकतम कॉलेजों पर सीमा लगाने के साथ ही एक विश्वविद्यालय में अधिकतम कितने विषयों में पढ़ाई हो इस पर भी सीमा लगाने पर भी विचार हो जिससे गुणवत्ता में सुधार आ सके। इसे समयबद्ध तरीके से मिशन मोड़ में पूरा करने की जरूरत है।**

(ट) शिक्षा तथा शोध के लिए बजट में अधिक प्रावधान ताकि प्रभावशाली ढंग से शोध के लिए उपयुक्त वातावरण बन सके और उच्च शिक्षा का खर्च विद्यार्थी के लिए कम से कम हो सके। कई पाश्चात्य देशों में उच्च शिक्षा मुफ्त है। उसी तरह **भारत में भी उच्च शिक्षा को मुफ्त करने के विषय में पहल हो सकती है।** हाल में विमुद्रीकरण से बाहर आए कालेधन को इस मुद्दे पर खर्च करने पर भी सोचा जा सकता है। कोचिंग सेन्टर तथा डिग्री बांटने वाले केन्द्रों को पूरी तरह बन्द करने पर सख्त नियम तथा कार्ययोजना बनाने पर छात्र कक्षाओं में लौटेगा।

(ठ) **उद्योगों को वैधानिक तरीके से एकेडेमिक संस्थाओं से जोड़ना ताकि उद्योगों की भी सामाजिक जवाबदारी बने।** प्रोफेशनल डिग्री में अंतिम वर्ष या अंतिम सेमेस्टर में वैधानिक तरीके से उद्योगों पर यह अनिवार्य करना चाहिए कि विद्यार्थी अपना प्रोजेक्ट वहां कर सकें और इसके लिए उद्योग उन्हें एक कर्मचारी की तरह ट्रीट करते हुए कुछ वेतन या स्टाइपंड भी दें।

संदर्भ

[1] 2016 राष्ट्रीय शिक्षा नीति–ड्राफ्ट पॉलिसी।

[2] Mashi K (2014) Governance Reforms in Higher Education: A study of International Autonomy in Asian Countries.

[3] Mueed MI (2013) Autonomy of Higher Education Institution.

[4] Berald Robert (1990) Academic Freedom Autonomy and Accounting in British Institution.

[5] Curtis, Neal "Customers is Always Right: Market Model could lead to Disaster, Times Higher Education (2010).

[6] Carnegie GD & Tuok J (2010) Understanding the ABC of University Governance. Australian Journal of Public Administration.

[7] Forest James JF (2008) Global Trends in University Governance.

[8] Minocha Arti (2013) "UGC's move to grant autonomy can only be disastrous in long run" Nov 13 DNA (News Papers).

[9] Namrata Tognatta (2014) Technical and Vocational Training in India: A study of choice and returns.